पाश्चात्य नैतिक चिन्तन के समक्ष नई चुनौती : सुख का जैववैज्ञानिक आधार

डॉ. अतुल कुमार मिश्र
शैक्षिक परामर्शदाता (दर्शनशास्त्र)
उ0प्र0राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सुख के प्रत्यय को लेकर दार्शनिक जगत में व्यापक चर्चा रही है। जिस पर प्राचीन काल से नैतिक विचारक चिन्तन करते रहे हैं। तथापि सुख की जैव वैज्ञानिक व्याख्या आधुनिक युग की देन है जो कि व्यापक शारीरिक विज्ञान के प्रकाश में आने के बाद प्रस्तुत हुई है। यह उन दार्शनिक सिद्धांतों को एक प्रकार से चुनौती भी देती है जिस पर दार्शनिक व्याख्यायें आधारित रही हैं। मनुष्य के सुख को लेकर जैव रासायनिक व्याख्या दार्शनिक चिन्तन के नये आयाम को भी उद्घाटित करती है।

जीव विज्ञानियों का मानना है कि हमारी मानसिक और भावनात्मक दुनिया विकास प्रक्रिया के लाखों सालों के दौरान ढले जीव रासायनिक तंत्र से अनुशासित होती है। तमाम दूसरी मानसिक अवस्थाओं की तरह ही हमारी व्यक्तिनिष्ठ खुशहाली वेतन, सामाजिक रिश्तों या राजनैतिक अधिकारों जैसे बाहरी मापदण्डों से निर्धारित नहीं होती। इसके बजाय वह स्नायुयों, तंत्रिका कोशिकाओं, सिनेप्सों और बहुतेरे जीव रासायनिक पदार्थों, जैसे कि सेरोटोनिन, डोपामाइन और आक्सीटोसिन से निर्धारित होती है।

लोग एक और सिर्फ एक चीज से सुखी होते हैं–शरीर कि सुखद अनुभूतियों से। जिस महिला ने अभी–अभी लाटरी जीती या सच्चा प्रेम पा लिया है और वह आनन्द से उछल रही है, वह वास्तव में पैसे या प्रेमी को लेकर प्रतिक्रिया नहीं कर रही है। वह दरअसल उसके रक्त प्रवाह के माध्यम से आनन्द से उन्मत्त हो रहे विभिन्न हार्मोनों और उसके मस्तिष्क के विभिन्न हिस्सों के बीच कौंध रहे विद्युत संकेतों के हंगामें पर प्रतिक्रिया कर रही होती है।

यह पृथ्वी पर स्वर्ग की रचना करने की सारी उम्मीदों का दुर्भाग्य है कि हमारी आन्तरिक जीव रासायनिक प्रणाली कुछ इस तरह निर्मित प्रतीत होती है कि वह सुख के स्तर को अपेक्षाकृत स्थिर बनाए रखती है। अपने आप में सुख के लिए कोई प्राकृतिक वरण नहीं है– एक संन्यासी के उद्विग्न अभिभावकों के जीन जैसे ही अगली पीढ़ी में स्थानान्तरित होंगे, वैसे ही उस संन्यासी की जेनेटिक श्रृंखला लुप्त हो जाएगी। सुख और दुःख विकास प्रक्रिया में इसी हद तक भूमिका निभाते हैं कि वे उत्तरजीविता और प्रजनन को प्रोत्साहित या हतोत्साहित करते हैं। ऐसे में यह आश्चर्य की बात नहीं है कि विकास–प्रक्रिया ने हमें न तो बहुत दुःखी होने के लिए ढाला है और ना ही बहुत सुखी होने के लिए। यह हमें सुखद अनुभूतियों के क्षणिक प्रवाह का आनन्द लेने में सक्षम बनाती है, लेकिन ये अनुभूतियां कभीभी हमेशा के लिए नहीं बनीं रहतीं। आगे पीछे वे शान्त हो जाती है और उनकी जगह अप्रिय अनुभूतियां ले लेती हैं।

पाश्चात्य नैतिक दर्शन की शुरुआत ग्रीक चिंतन से मानी जाती है। ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी में कुछ ऐसे चिंतक अस्तित्व में आए जिन्होंने मनुष्य के चरित्र एवं व्यावहारिक जीवन सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करना आरम्भ किया। इन्हें **'सोफिस्ट'** कहा जाता है जिनका उद्देश्य मानव जीवन की नैतिक समस्याओं पर चिंतन करके उनकी समस्याओं का समाधान करना था। सोफिस्ट शब्द की व्याख्या में शिक्षक अथवा प्राध्यापक का अर्थ ग्रहण किया जाता है इसके महत्वपूर्ण दार्शनिक प्रोटोगोरस हैं।

प्रोटोगोरस का प्रसिद्ध कथन है कि, ''मनुष्य सभी वस्तुओं का मापदण्ड है। सोफिस्टों के अनुसार किसी सिद्धांत के उचित अथवा नैतिक होने की एक मात्र कसौटी व्यक्ति के लिए उसकी व्यावाहारिक उपयोगिता है। यह भौतिक वस्तुओं की भांति सद्गुण और नैतिकता को भी मनुष्य के व्यावाहारिक जीवन की सफलता के साधन के रूप में देखते हैं फलतः उनके नैतिकता में संदेहवाद, व्यक्तिनिष्ठवाद तथा सापेक्षतावाद की प्रधानता है सोफिस्ट नैतिक नियमों को मूलतः व्यक्ति सापेक्ष मानते हैं। यूनान के विभिन्न राज्यों में प्रचलित भिन्न–2 तथा विरोधी नैतिक रीति–रिवाजों और धार्मिक

विश्वासों को देखकर सोफिस्ट इसी निष्कर्ष पर पहुंचे कि अपने आप कोई भी वस्तु या कार्य शुभ या उचित नहीं है उसका शुभ या उचित होना भावनाओं की इच्छा पर निर्भर होता है उनका यह भी कथन है कि अपने आप में किसी भी वस्तु का कोई भी मूल्य नहीं होता मनुष्य द्वारा उसके बुद्धि संगत उचित उपयोग के कारण ही मूल्यवान हो जाते हैं।

सोफिस्ट दर्शन के बाद आए चिंतक में **सुकरात** महत्वपूर्ण हैं जहां सोफिस्टों ने ज्ञान को व्यावहारिक जीवन में मनुष्य की व्यक्तिगत सफलता का साधन माना था तो दूसरी ओर सुकरात ने सत्य की खोज को ही दर्शन का मुख्य उद्देश्य स्वीकार किया। उनके अनुसार ज्ञान ही सद्गुण है।समस्त नैतिक सद्गुण वस्तुतः ज्ञान के ही रूप हैं क्योंकि यदि हमें शुभ सत्य, न्याय आदि का सही ज्ञान हो तो हम अपने जीवन में ऐसे कार्य कभी नहीं कर सकते जो अशुभ या अनुचित हों। उनके अनुसार सभी प्रकार की अनैतिकता केवल अज्ञान से ही पैदा होती है। अतः बुराइयों से मुक्त होने के लिए अज्ञान का निराकरण जरूरी है। श्रेष्ठ व्यक्ति होने के लिए सद्गुणों का ज्ञान ही आवश्यक नहीं है उसके अनुरूप व्यवहार भी जरूरी है। उनका प्रसिद्ध कथन है कि अनपरखा जीवन जीने योग्य नहीं होता।

सुकरात मानते हैं कि विवेक, साहस, संयम, न्याय आदि सभी सद्गुण अन्ततः ज्ञान के ही रूप हैं। अतः इनमें कोई मौलिक भेद नहीं है। इसे सुकरात का सद्गुणों की एकता का सिद्धांत कहा जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार सभी सद्गुण परस्पर पूरक होते हैं। अतः इनमें कोई विरोध संभव नहीं है। उनका महत्वपूर्ण कथन है कि वास्तविक एवं स्थायी आनन्द स्रोत भौतिक वस्तुओं में न होकर स्वयं मनुष्य के भीतर ही है। इसी कारण सुकरात बार–बार कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को सदैव आत्मसम्मान को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए अर्थात् उसे अपने आप को जानने का प्रयत्न करना चाहिए।

सोफिस्ट एवं सुकरात के विचारों के उपरान्त सेरेनिक एवं सिनिक सम्प्रदाय विकसित हुए जो कि सोफिस्ट एवं सुकरात के विचारों से प्रभावित माने जाते हैं। ग्रीक दर्शन में सुख को जीवन का अंतिम लक्ष्य घोषित करने वाले संप्रदाय को **सेरेनिक** कहा गया। सर्वप्रथम इसके संस्थापक आरिस्टियस मानव स्वभाव का विश्लेषण करते हुए कहा कि प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में जो कुछ करता है। उसके मूल में अधिकतम सुख प्राप्त करने की इच्छा निहित होती है। उनके विचार में कर्मों के शुभ या अशुभ की एकमात्र कसौटी सुख ही है। सेरेनिक पूर्णतः भौतिकवादी थे और केवल जड़ पदार्थों की सत्ता को ही स्वीकार करते थे। उनका ईश्वर, आत्मा एवं ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं था। उन्होंने मानसिक सुख की अपेक्षा शारीरिक सुख को ही अधिक महत्व दिया। यह संप्रदाय विवेक, ज्ञान, आत्मनियन्त्रण आदि गुणों को स्वतः साध्य न मानकर सुख प्राप्ति का साधन मानते थे।

सेरेनिक अपने नैतिक सिद्धांत सुकरात के सुख या आनंद संबंधी विचारों के आधार पर स्थापित हुए थे जबकि **सिनिक** ने सुकरात के सद्गुण तथा आत्मसंयम संबंधी विचारों को ही अपने नैतिक सिद्धांतों का आधार बनाया। इसके संस्थापक **एंटीस्थनीज** थे। उनका कथन है कि मनुष्य को शारीरिक तथा मानसिक सभी प्रकार के सुखों को पूर्णतः परित्याग करना चाहिए क्योंकि सुख की कामना ही मनुष्य को इच्छाओं और वासनाओं का दास बना देती है। मनुष्य का परम ध्येय विवेक ज्ञान एवं सद्गुण से पूर्ण जीवन व्यतीत करना ही है। सर्वप्रथम **सिनिक** ने ही विश्व नागरिकता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। मनुष्य स्वयं ही अपने भाग्य का निर्माता है इस मत को स्वीकार करते हुए सिनिक ने घोषित किया कि व्यक्ति को दूसरे के द्वारा बनाये गए नियमों को स्वीकार न करके केवल अपने विवेक द्वारा प्राप्त नियमों के अनुसार आचरण करना चाहिए। उनका प्रसिद्ध कथन है कि–''सुख की कामना के वशीभूत होने की अपेक्षा पागल हो जाना अधिक अच्छा है।''

उपर्युक्त दोनों ही मत अत्यधिक भोगवाद एवं अत्यधिक त्याग के कारण सभ्य जीवन की अवहेलना करते थे। जिसके कारण इन दोनों मतों को यूनानी समाज द्वारा मान्यता नहीं मिली तथापि सुकरात के जीवन और चिंतन के आधार पर **प्लेटो** ने प्रभावशाली नैतिक सिद्धांत प्रस्तुत किया जो कि सामान्य जीवन के साथ प्रशासन में भी प्रासंगिक माना जाता है। सुकरात के जीवन एवं चिन्तन के आधार पर प्लेटो ने अपना नैतिक सिद्धांत प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार नैतिक आचरण की दृष्टि से सुख के प्रत्यय तथा उसके ज्ञान का सर्वाधिक महत्व है, विवेक साहस संयम व न्यायरूपी चार सद्गुण नैतिक आचरण के आधार हैं। जिस समाज में यह चारों मुख्य सद्गुण उचित मात्रा में सम्मिलित होते हैं वही भौतिक, नैतिक आदि सभी दृष्टियों से विकसित व उन्नत हो सकता है। सुरक्षा एवं व्यवस्था के लिए विवेक

का होना आवश्यक है। आंतरिक अव्यवस्था एवं वाह्य आक्रमण से रखा के लिए साहस रूपी सद्गुण अनिवार्य है। कृषकों, श्रमिकों तथा व्यावसायियों का कार्य वस्तुओं का उत्पादन एवं समृद्धि के लिए परिश्रम करना है इसीलिए इनमें संयम का सद्गुण होना चाहिए।

उपर्युक्त तीनों गुणों का समावेश न्याय में होता है। जिस राज्य के प्रशासक विवेकपूर्ण जनता का मार्गदर्शन करते हैं योद्धा साहस पूर्वक उनकी रक्षा करते हैं और कृषक, श्रमिक तथा व्यवसायी संयमपूर्वक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं उसी राज्य को न्याय पर आधारित माना जा सकता है। मनुष्य के जीवन में भी बुद्धि द्वारा विवेक का प्रयोग करन, भय से मुक्ति के लिए साहस और कार्यपूर्ति हेतु संयम का होना आवश्यक है और इन तीनों के संतुलन से व्यक्ति में न्याय का सद्गुण आ जाता है। प्लेटो मनुष्य के सैद्धांतिक तथा व्यवहारिक पक्षों के पूर्ण समन्वय पर आधारित जीवन को ही आदर्श मानते हैं। आनन्द एवं चिन्तन का समुचित समन्वय ही अन्तिम शुभ है और इसी में मानव कल्याण निहित है। वस्तुतः प्लेटो सुख या आनन्द को मानव कल्याण का आवश्यक अंग मानते हैं तथा उनके विचार में नैतिकता का मूल आधार विवेक या बुद्धि ही है।

मानव के बौद्धिक तथा भावनात्मक पक्षों के आधार पर **अरस्तू** ने सद्गुणों को बौद्धिक तथा नैतिक श्रेणियों में विभाजित किया है। उनके मतानुसार विवेक ही प्रमुख बौद्धिक सद्गुण है जिसके दो पक्ष सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक हैं। दार्शनिक चिन्तन तथा वैज्ञानिक ज्ञान में विवेक का सैद्धांतिक पक्ष निहित है। जबकि व्यावहारिक जीवन में मनुष्य के कर्मों को नियंत्रित तथा नियमित करने वाली व्यावहारिक बुद्धिमत्ता, विवेक का व्यावहारिक पक्ष मानव जीवन का व्यावहारिक बुद्धि सभी मनुष्यों में सामान्य रूप से पाई जाती है जिसे उचित शिक्षा द्वारा बढ़ाया जा सकता है। बौद्धिक सद्गुण ज्ञान के विभिन्न रूप है जबकि नैतिक सद्गुण मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृत्ति संवेदनों तथा वासनाओं को नियंत्रित करती है।

अरस्तू के अनुसार मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का नियमन करना ही नैतिक सद्गुणों का प्रमुख उद्देश्य है जिसकी पूर्ति विवेक के अभाव में संभव नहीं है। अरस्तू विवेक के अतिरिक्त संयम साहस और न्याय के साथ–साथ उदारता नम्रता प्रेम–मैत्री आदि अन्य नैतिक सद्गुणों का भी उल्लेख करते हैं। उनके अनुसार नैतिक सद्गुण दो विशेष अतिवादी दृष्टिकोणों के बीच की अवस्था है जैसे संयम अत्यधिक भय एवं आनंन्द रहित संन्यास की मध्यवर्ती स्थिति है जबकि साहस, दो गुणों– दुःसाहस एवं कायरता के बीच का हिस्सा है। इस प्रकार नैतिक सद्गुण मनुष्य के ऐच्छिक कर्मों में व्यक्त होते हैं जो उन पर बिना किसी बाहरी दबाव या विवशता के किए जाते हैं। अरस्तू मानते हैं कि बौद्धिक तथा भावनात्मक पक्षों के समुचित समन्वय द्वारा मनुष्य का जीवन आनन्दमय हो सकता है यही आदर्श जीवन है। आनन्द मनुष्य की वह शांतिपूर्ण मानसिक स्थिति है जिसका प्रयोग वह जीवन भर सद्गुणयुक्त जीवन व्यतीत करने के परिणामस्वरूप प्राप्त करता है।

सेरेनिक संप्रदाय से प्रभावित 'एपीक्यूरिनवाद' के संस्थापक **एपिक्यूरियन** ने परिस्कृत सुखवाद की स्थापना की। उन्होंने सुख को ही मनुष्य के जीवन का एकमात्र लक्ष्य घोषित किया। उनके अनुसार मनुष्य में दो तरह की इच्छाएं होती हैं। प्रथम स्वाभाविक व द्वितीय अनावश्यक स्वाभाविक इच्छाएं जैसे भूख प्यास निद्रा मनुष्य के लिए अनिवार्य है जबकि अधिकाधिक धन संग्रह अत्यधिक महत्वाकांक्षा जैसी प्रवृत्ति कृत्रिम एवं अनावश्यक है। यह सभी शारीरिक एवं मानसिक शांति में बाधा उत्पन्न करती है। मनुष्य का विवेक ही उसे कृत्रिम इच्छाओं से मुक्त कर सकता है। .

सिनिक का परिष्कृत रूप **स्टोइकवाद** में प्रदर्शित होता है। इसके संस्थापक **जेना** को माना गया है। उन्होंने सिनिक के मत को स्वीकार करते हुए कहा कि विवेकशील व्यक्ति को अपनी प्रवृत्ति एवं वासनाओं का दमन करते हुए केवल बुद्धि के आदेशानुसार सद्गुण युक्त जीवन जीना चाहिए। मनुष्य को सभी परिस्थितियों में अपना मानसिक संतुलन बनाए रखना चाहिए उनका प्रमुख कथन है कि 'प्रकृति के अनुसार जीवन व्यतीत करो' जिसका अर्थ है– मनुष्य को बुद्धि से प्रेरित कार्यों को ही करना चाहिए इन्होंने भी विश्व नागरिकता का संदेश दिया है।

विश्व बन्धुत्व पर विश्वास करने के कारण स्टाइक न्याय, समानता आदि सामाजिक सद्गुणों को विशेष महत्व देते हैं। उनके अनुसार प्रत्येक मनुष्य समान है। अतः बड़े–छोटे स्वामी सेवक का भेदभाव अनुचित है।

उपर्युक्त चिन्तन के बाद ग्रीक में अनेक दार्शनिक विचारक आए तथापि नैतिकता के संदर्भ में विशेष चर्चा नहीं रही। ग्रीक चिन्तन में उपरान्त मध्ययुग में ईसाई धर्म के प्रभाव के कारण नैतिकता का आधार धर्म बन गया। इस दौर में नैतिकता के स्वतंत्र चिन्तन पर एक प्रकार से रोक लग गयी थी। इस क्रम में आधुनिक काल के अन्तर्गत स्वतंत्र चिन्तन एवं निष्पक्षता के परिणाम स्वरूप नीतिशास्त्र का अध्ययन परंपरागत धार्मिक सिद्धांतों के प्रभाव से मुक्त हुआ और मानवीय कर्मों के औचित्य तथा अनौचित्य के निर्धारण हेतु मानव स्वभाव को आधार बनाया गया। आधुनिक नैतिक मापदण्ड किसी दैवशक्ति या धर्म से संबंधित नहीं थे जो कि मूलतः मनौवैज्ञानिक व्याख्या से प्रभावित रहे।

मनोवैज्ञानिक स्वार्थवाद के समर्थन में **हाब्स** कहते हैं कि वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति पूर्णरूपेण स्वार्थी होता है। वह तब तक दूसरों के हित की कोई चिन्ता नहीं करता जब तक ऐसा करने में उसे स्वयं लाभ न हो। दूसरों के हित के प्रति पूर्णतः उदासीन होकर प्रत्येक मनुष्य सदैव मात्र अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने का अधिकाधिक प्रयास करता है। हाब्स के अनुसार इन इच्छाओं में अपने जीवन को सुरक्षित रखने की इच्छा और अधिकतम सुख प्राप्त करने की इच्छा प्रमुख है। अतः इससे संबंधित प्रत्येक कर्म नैतिकता की सीमा में आ जाते हैं। उनका प्रसिद्ध कथना है कि जिस प्रकार हम एक पत्थर को ऊपर न उठ सकने और धरती पर गिर जाने के लिए दोष नहीं देते उसी प्रकार हम मनुष्य को केवल स्वार्थसिद्ध के निरन्तर प्रयास के लिए दोषी नहीं मान सकते हैं। इस दृष्टि से हाब्स मनौवैज्ञानिक स्वार्थवाद को ही समस्त कर्मों का मूल आधार मानते हैं।

मनोवैज्ञानिक सुखवाद के समर्थन में श्लिक कहते हैं कि मनुष्य के सभी कर्मों की मूल प्रेरक शक्ति सुख की इच्छा ही है। वह केवल वही कर्म करता है जिसे वह अपने लिए सर्वाधिक सुख देने वाला समझता है क्योंकि प्रत्येक अनुभव में सुखात्मक दुखात्मक अनुभूति निहित रहती है। कर्मों के प्रेरक विचारों में अधिकतम सुखद अथवा कर्म दुखद होता है। अन्त में उसी की विजय होती है।

यहां पर श्लिक परोपकार और आत्म बलिदान को भी अन्ततः मनुष्य को अपने आनंद के साधन के रूप में देखते हैं। किसी महान उद्देश्य के लिए अपने जीवन का बलिदान करना उसे ऐसे आनंद के लिए प्रेरित करता है जिसे छोड़ना जीवन के बलिदान की अपेक्षा अधिक कष्टदायक है। श्लिक का कथन है कि जिस प्रकार हमारे नेत्र पूर्ण अन्धकार में ढकी किसी वस्तु को नहीं देखपाते उसी प्रकार हमारी क्रियाशक्ति किसी ऐसे लक्ष्य द्वारा नहीं प्रेरित हो सकती जिसका विचार हमारे लिए पूर्णतः दुखद हो अथवा हमारे लिए किसी प्रकार का आकर्षक व प्रलोभन हो।

सुखवाद का समर्थन करते हुए **बेन्थम** उसे उपयोगितावाद से जोड़ते हैं। उनके अनुसार दुख से मुक्ति अथवा सुख ही अपने आपमें शुभ है। इसी प्रकार दुख बिना अपवाद के अपने आप में अशुभ है। प्रत्येक व्यक्ति को केवल अपने सुख के लिए ही नहीं अपितु अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख के सिद्धांत के अनुसार आचरण करना चाहिए। उपयोगिता के अतिरिक्त नैतिकता का कोई आधार नहीं हो सकता इसलिए अधिकतम व्यक्तियों के लिए अधिकतम सुख में सहायक कर्म नैतिक माने जाने चाहिए क्योंकि यह अधिकतम व्यक्तियों के लिए उपयोगी है। बेन्थम सभी सुखों को गुणात्मक दृष्टि से समान मानते हैं अर्थात् एकसुख दूसरे सुख की अपेक्षा उत्कृष्ट नहीं होता। बेंथम चार कारणों भौतिक दबाव राजनैतिक दबाव सामाजिक दबाव एवं धार्मिक दबाव को मानते हैं जिसके कारण कोई व्यक्ति अपने साथ दूसरे के भी सुखों का ध्यान रखता है। शारीरिक स्वास्थ्य के लिए जिन प्राकृतिक नियमों का पालन करना आवश्यक है वह भौतिक दबाव है। राजनीतिक कानूनों एवं सामाजिक नियमों का उल्लंघन आपको दण्ड या निन्दा का पात्र बना सकता है यह राजनैतिक एवं सामाजिक दबाव है और दूसरों का अहित करने पर ईश्वर दण्ड दे सकता है यह धार्मिक दबाव कहलाता है।

सुखमूलक उपयोगितावाद को तार्किक बनाते हुए **जे0एस0 मिल** कहते हैं कि सुखों में केवल परिमाणात्मक भेद नहीं होता बल्कि गुणात्मक भेद भी होता है। अधिक तीव्र शारीरिक सुख की अपेक्षा कम तीव्र बौद्धिक सुख गुणात्मक दृष्टि से कहीं अधिक उत्कृष्ट होता है इसलिए शारीरिक सुख की अपेक्षा बौद्धिक या मानसिक सुख को अधिक वांछनीय माना जाता है। मिल के अनुसार हमें दार्शनिक अथवा आध्यात्मिक चिन्तन एवं कविता, संगीत आदि ललित कलाओं से जो सुख प्राप्त होता है वह इन्द्रिय सुख की अपेक्षा कहीं अधिक उत्कृष्ट है। उनका प्रसिद्ध कथन है कि 'एक संतुष्ट

शूकर होने की अपेक्षा असंतुष्ट मनुष्य होना अधिक अच्छा है। संतुष्ट मूर्ख होने की अपेक्षा असंतुष्ट सुकरात होना कहीं अधिक अच्छा है।

सुख के साथ दूसरों के हित के संदर्भ में मिल कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य में दूसरों के साथ मिलकर रहने तथा उनके सुख–दुख का ध्यान रखने की स्वाभाविक इच्छा होती है। मनुष्य की परोपकार संबंधी इसी स्वाभाविक भावना को मिल ने आंतरिक दबाव की संज्ञा दी है। जो उनके विचार में प्रत्येक सहृदय व सुसंस्कृत व्यक्ति को उपयोगितावाद के मूल सिद्धांत अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख के अनुसार आचरण करने के लिए प्रेरित करता है।

बेंथम एवं मिल से सहमत होते हुए **सिजविक** कहते हैं कि मनुष्य वास्तव में सुख की नहीं अपितु उन वस्तुओं की इच्छा करता है जिससे उसे सुख प्राप्त होता है। जैसे–भूखा होने पर मनुष्य मूलतः भोजन की इच्छा करता है उससे प्राप्त होने वाले सुख की नहीं। वह कर्तव्यभावना अथवा परोपकार वृत्ति से प्रेषित होकर भी अनेक कार्य करता है जो कि प्रकारान्तर में उसे सुखी करते हैं। सिजविक अपने सिद्धांत सुखवाद के विरोधाभास में कहते हैं कि जब तक सुखों की तलाश या सुख प्राप्त करने की इच्छा विद्यमान रहेगी तब तक वयक्ति सुख की अनुभूति नहीं कर सकता। सिजविक इसे बौद्धिक उपयोगितावाद के रूप में परिभाषित करते हैं। उनके अनुसार उपयोगिकतावाद को मूल सिद्धांत बुद्धि पर आधारित है। विश्व में केवल सुखी अपने आप में सुख से वांछनीय है। इसका ज्ञान हमें अन्तः प्रज्ञावाद के आधार पर होगा। मनुष्य के अपने सुख को लागू करके दूसरों के हित के लिए प्रयास करने से संपूर्ण सुख की मात्रा में वृद्धि होती है तो हमें अवश्य ही ऐसा करना चाहिए। इसे ही सिजविक ने परोपकार का सिद्धांत कहा है जिसकी सत्यता उन्हें उसी प्रकार प्रतीत होती है जिस प्रकार नैतिकता के लिए न्याय तथा समानता के सिद्धांत अपरिहार्य है।

वर्तमान समय में दार्शकिन व्यक्तिनिष्ठ खुशहाली से सम्बन्धित प्रश्नावली बांटते हैं और उससे प्राप्त नतीजों का आपसी रिश्ता सम्पत्ति और राजनैतिक स्वतंत्रता जैसे सामाजिक–आर्थिक कारकों से जोड़ने की कोशिश करते हैं। जीव विज्ञानी भी उसी प्रश्नावली का इस्तेमाल करते हैं लेकिन लोग जो जबाब देते हैं उनका रिश्ता जीव रासायनिक और जेनेटिक कारकों को जोड़कर देखते हैं।

एक से दस तक के पैमाने पर कुछ लोग ऐसी खुश मिजाज जैवरासायनिकी के साथ पैदा होते हैं, जो उनकी मनःस्थिति को छह और दस के बीच के स्तरों पर डोलते रहने और समय के साथ आठ पर स्थिर होने की गुंजाइश देती है। ऐसा व्यक्ति खासा सुखी रहता है, भले ही वह किसी अलगावग्रस्त महानगर में न रहता हो, उसने स्टाक एक्सचेंज की गिरावट में अपना सारापैसा क्यों न गंवा दिया हो और उसे मधुमेह की बीमारी क्यों न हो गई हो, जगकि कुछ लोग ऐसी मायूस कर देने वाली जैव रासायनिकी से अभिशप्त होते हैं, जो तीन और सात के बीच डोलती रहती है और पांच पर जाकर स्थिर हो जाती है। इस तरह का दुःखी व्यक्ति अवसाद में डूबा रहता है, भले ही उसे किसी संगठित समुदाय का सहारा मिला हुआ हो।

स्पष्ट है कि जैव वैज्ञानिक व्याख्या व्यक्ति के सुख को वाह्य परिस्थितियों अथवा शारीरिक अनुभूतियों से आगे बढ़ाती हुई रासायनिक व्याख्या को स्वीकार करती है। जिस पर व्यक्ति को सुखी रहने के लिए कुछ एंजाइन्म्स को ही उत्तरदायी मानने के साथ सामान्यतः उसे अपरिवर्तनशील माना गया है। यह पाश्चात्य नैतिक चिंतन में व्याख्यायित सुख की अवधारणा को परिवर्तित करती है जो कि नैतिक विचारकों के लिए चिन्तन का नया आयाम एवं चुनौती बन गई है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. वर्मावेद प्रकाश : नीति शास्त्र के मूल सिद्धांत, एलाइड पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, 15 जे.एन.हेराडिया मार्ग, बैलार्ड एस्टेट, मुंबई, 2009
2. डॉ. मिश्र हृदय नारायण, पाश्चात्य दर्शन का इतिहास एवं समस्याएं, शेखर पकाशन, चक जीरो रोड, इलाहाबाद, 2012
3. Guite Haulianlal : Confessions of a Dying Mind, Bloomsbury Publisingh India Pvt. Ltd. DDA Complex, Vasant Kunj, New Delhi.2017

4. हारारी युवाल नोआ – सेपियन्स : मानवजाति का संक्षिप्त इतिहास, मंजुल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, 2019
5. फ्रीडमैन टामस एल –द वर्ल्ड इज फ्लैट, पेंगुइन ग्रुप (यू0एस0ए0) इंक 375 हडसन स्ट्रीट, न्यूयार्क 10014, यू0एस0ए0

****